उत्तराखंड के आदिम निवासी व शिल्पकार

संदीप कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
डी.एस.बी. परिसर नैनीताल।

उत्तराखंड का आनुवांशिक इतिहास विषम, बहुआयामी, जटिल, अपने आप में अद्वितीय है। जिसमें जातीय एकरूपता की प्रवृत्ति विविध जातीय समूहों में देखनें को मिलती हैं। प्राचीन उत्तराखंड के समाज में कबीलाई, पशुचारक, कृषि आधारित समाज के विभिन्न सांस्कृतिक समूह भौगोलिक व भाषायी आधार पर ज्ञात होते है। जिनमें से कुछ का अस्तित्व तो आज भी अपना पारंपरिक रूप बनाये हुए है। उत्तराखंड के आदिम निवासी शिल्पकारों व उनकी प्राच्य स्थिति के बारे में प्रस्तुत अध्ययन में यहां विवेचना की गयी है। उत्तराखण्ड और हिमांचल क्षेत्र के मध्य हिमालय क्षेत्र में प्राचीन काल में विभिन्न जातीय समूहों और जातियों का कब्जा था और यह प्रक्रिया लंबे समय तक निरंतर जारी रही। कोल– किरात, तणंग, खस, शक, नाग, कुणिंद, यौद्धेय, आदि यहां के प्राचीन निवासी है।

ऋगवेद आर्यों के काल ई0पू0 1200–1000 में भारत में चार जातियां मुख्यतः निवास करती थी, जिनमें कोल या कोलारी(आस्ट्रिक, निषाद) सप्त सिंधु से बहुत दूर रहते थे। इसलिये उनसें उस समय आर्यो का कोई संबंध नही था। आर्यो के घनिष्ट संपर्क और संघर्ष में आने वाले मोहनजोदड़ों और हड़प्पा की सीय जाति– द्रविड़ और कश्मीर से असाम और आगें के पहाड़ों तथा तराई में बसने वाली जाति किरया किरात(मोन–ख्मेर) मुख्य थी।”[(1)]

”गढ़वाल के आदिम निवासियों के संबंध में पुराणों में मत है कि सिद्धगन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि यहॉ निवास करते थे और उनका राजा कुबेर था। महाभारत काल में इन तीन जातियों की तीन शक्तियों का वर्णन मिलता है। राजा सुबाहू श्रीपुर (श्रीनगर में), विराट (वैराटगढ़ी कालसी के निकट) में और वाणासुर ऊखीमठ में राज्य करते थे। गढवाल क्षेत्र का ऐतिहासिक परिचय पाणिनी की अष्टध्यायी में मिलता है। पाणिनी ने कुणिंद या कुलिन्द गणराज्य का उल्लेख पॉचवी शताब्दी ईसापूर्व में किया। यह राज्य सतलज, यमुना गंगा और काली नदी की उपत्यकाओं में फैला था। इस राज्य में छः छोटे–छोटे प्रदेश थे, जिनका विस्तार इस प्रकार मिलता है–

1. तमसाः (टोन्स नदी की) उपत्यकाः वर्तमान जौनसार बावर।
2. कलकूट (कलकूटः कालसी) यमुना की दक्षिणी उपत्यकाः वर्तमान देहरादून जिले का मैदानी क्षेत्र।
3. तकण (टंकण)– वर्तमान चमोली और उत्तरकाशी के भोटान्तिक क्षेत्र।

4. भारद्वाजः वर्तमान टिहरीः गढ़वाल और पौड़ी गढ़वाल जिले।
5. रंकुः पिंडर नदी की उपरलि उपत्यका और पिथौरागढ़ जिले का भोटान्तिक क्षेत्र।
6. आसेयः वर्तमान नैनीताल एवं अल्मोड़ा जिले का क्षेत्र।"[2]

संस्कृति के चार अध्याय में दिनकर लिखते है– महाभारत में वृषल उन्हें कहा गया है, जो कि आर्यावृत से बाहर थे, जैसे–शक, यवन, पारद, चीन, किरात, दारद, आदि जातियों के लोग। "महाभारत के वनपर्व अध्याय 140 में वर्णन आता है कि पांडव गण गन्धमादन पर्वत(बद्रीनाथ) जातें समय, मार्ग में सुबाहु नरेश की राजधानी में ठहरे थे जो आज श्रीनगर(गढवाल) नाम से प्रसिद्ध है, एवं इस राज्य के निवासी किरात, तंगण तथा पुलिन्द थे–

किरात तंगणाकीर्ण पुलिन्द शत संकुलम्।
हिमवत्यवरे जुष्टं पिकाश्चर्य समाकुलम।।

आचार्य कवि राजशेखर ने भी अपने ग्रन्थ काव्य मीमांसा में किरात जाति के शौर्य एवं कांतिमय व्यक्तित्व का भी इस ग्रंथ में उन्होनें वर्णन किया है–

मार्गाः पान्थ प्रियांतयक्ता दूराकृष्ठशिलीमुखम्।
स्थितं पन्थान मा वृत्य कि किरात न पश्यति।।" "29–30[3]

"मिस्टर एटकिंसन का विचार है कि विष्णु पुराण, महाभारत, वाराहीसंहिता से यह पता चलता है कि एक बडा समूह मनुष्यों का जो भारतवर्ष के किनारे–किनारें निवास करता था उसमें सकास, नाग, हूण, खस, किरात, जातियां हिमालय मे निवास करती थी।"[4]

"केदारखण्ड में गढवाल और श्रीक्षेत्र(श्रीनगर) को कोलासुर की राजधानी बताया गया हैं। उत्तराखण्ड के प्राचीनतम निवासियों में प्रमुख कोलसर मुण्ड जाति के बारे में पौराणिक आख्यानों से सूचना नहीं मिलती, पर द्विजवर्मन के तालेश्वर तामपत्र में उल्लिखित कोल्लपुरी तथा वर्तमान स्थान नामों में कोली, कोली गॅूठ, कोलांडी, कोलखी, कोलखांडी, कोलगाड, कोलडुंगरी, कोलारी, कोली, कोलीधार, कोलीगांव, कोल्याणी जैसे अनेक स्थान नाम अतीत में इस क्षेत्र में कोल जाति के व्यापक प्रसार का संकेत देते है। कोल जाति के वंशजों में वर्तमान कोली, कोलटा, बाजीगर, ओड़ आदि सभी शिल्पकारों को सम्मिलित किया जाता है।"[5]

"उत्तराखंड में इनकी प्रजातीयता तथा आनुवांशिकता के संबंध में मि0 आकेले, ई0एस0 का कहना है– ये लोग(कोल–किरात) यहां के मूल निवासियों के प्रतिनिधि है तथा यहां पर खशों तथा अप्रवासी

आर्यो के आने से बहुत पहले से यहां पर रहते आ रहे है। मि0 कुक, डब्ल्यू का भी कहना है कि हिमालय के भू–भाग में डूमों को वेंदों में उल्लेखित दास–दस्युओं के वंशज माना जाता है जिन्होने कि भारत के उत्तरी क्षेत्रों पर नागों तथा खशों के आने से पूर्व ही अधिकार कर लिया था। डॉ0 मजूमदार, डी0एन0 का कहना है कि वर्तमान वैज्ञानिक विधियों के द्वारा किए गये प्रजातीय विश्लेषणों के अध्ययन से स्पष्ट है कि यहां कि शिल्पकार जाति का उस नृवंशीय जाति के साथ संबंध स्थापित नही हो सकता जिसका संबंध उत्तराखंड के ब्राह्मण, व राजपूतों में पाया जाता है।"(6)

"मजूमदार ने उत्तराखंड के निवासियों को तीन नृवंशों– आदिम डोम नृवंश, मंगोलाइत नृवंश और खस नृवंश का रक्त स्वीकार किया है, जबकि डबराल उत्तराखंड के लिए गुहा के उसी वर्गीकरण को मानते है जिसके अनुसार भारत के निवासियों में निषाद, कोल, किरात, तिब्बती, मंगोल, आदिम रोमसागरीय, रोमसागरीय, दरसादि, खस, शक और वैदिक आर्य आदि ग्यारह नृशाखाओं का रक्त स्वीकारा गया है।"(7)

"भाषा, रक्त और संस्कृति परम्पराओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि खस देश और किरात बनने से पूर्व उत्तराखंड कोल जाति का क्रीड़ा स्थल था। कोल जाति वर्तमान प्रतिनिधि उत्तराखंड की शिल्पकार जातियॉ है। वास्तव में ये ही उत्तराखंड के आरम्भिक समाज के निर्माता है।"(8) "डॉ0 शिवप्रसाद डबराल का मत है कि कोल या मुन्ड जाति भारत और हिमालय की प्राचीनतम और उसके पश्चात् क्रमशः खश जातियॉ हिमालय प्रदेश में आ बसी। डॉ0 डबराल के अनुसार कोल उत्तराखण्ड के आदि निवासी है। एक समय था जब कोल या मुण्ड जाति उत्तर भारत के समग्र मैदानी प्रदेशों में छाई हुई थी।"(9)

"टिहरी रियासत के वजीर एवं गढवाल के जाने माने इतिहासविद् हरिकृष्ण रतूडी ने सन् 1928 में लिखी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक गढवाल का इतिहास में महाभारत वनपर्व का संदर्भ देतें हुये बतातें हैं कि उस काल में केदारखंड में मुख्य रूप से तीन राज शक्तियॉ होती थी। राजा सुबाहु, जिसकी राजधानी श्रीनगर थी और यह राजा किरात, कुलिन्द एवं तगंण जाति का राजा बताया गया है। इसी जाति से संबधित दूसरा राजा विराट बताया गया है। इसी जिसकी राजधानी कालसी के समीप विराटगढी में थी। तीसरा राजा बाणासुर था, जिसकी राजधानी ऊखीमठ के समीप बताई गई है। महाभारत में संदर्भ आने से सिद्ध होता है कि इन तीनों राजाओं का काल ईसा से 3000 वर्ष से भी पूर्व का है। भले ही रतूडी ने भी शिल्पकारों के लिए डोम शब्द का प्रयोग किया है। शायद यह उनकी तत्कालीन सामाजिक विवशता रही होगी, मगर कम से कम उन्होनें यह सिद्ध तो कर दिया कि डोम जाति के लोग तंगण व कुलिंदों के वंशज हैं।"(10)

प्रो0 डी.डी. शर्मा कहते है– ”हिमालयी क्षेत्रों के नृतत्त्वविदों का भी मानना है कि प्रागैतिहासिक कोल ही यहां के मूल निवासी थे। किरात और खसों का आगमन अपेक्षाकृत रूप से कालान्तर में हुआ था। कोल प्रजातीय जनों ने किस प्रकार हिमालयी समाज को प्रभावित किया है, इसकी चर्चा अत्यंत आवश्यक है। सबसे पहले हम पवित्र तिथियों और पर्वो के कतिपय उदाहरण लेते हैं। कुमाऊॅ में मनाये जाने वाला दसै (दशमी) का पर्व कोल–संस्कृति की देन हैं। चैत्र मास के नवरात्रों में मनायें जाने वालें इस पर पर्व पर लोकदेवी–देवताओं के नाम से धूनियां प्रज्वलित की जाती है। लोकदेवी–देवताओं के जागर लगाये जाते हैं। इनका राम से कोई संबंध नहीं होता है।”(11)

”कुमाऊॅ में जाति व्यवस्था पर कार्य करने वाले प्रथम अनुसंधाता स्व0 डॉ0 रामी सनवाल द्वारा इस संदर्भ में की यह टिप्पणी बडी सटीक है कि ”वर्ग समष्टि के रूप में मान्य जाति की सामान्य अवधारणा के अनुसार कुमाऊॅ ने (एतदर्थ गढवाल) में भी तथाकथित जातियों में से कोई भी ऐसी नहीं जिसे जाति का नाम दिया जा सकता हो। क्योंकि जाति व्यवस्था के अनुरूप यहां पर न तो कभी किसी जाति या उपजाति के सदस्य एकत्र होते है और न कभी परस्पर कोई साक्षात् संपर्क ही स्थगित करते हैं। यहां पर सामूहिक रूप से संपादित किय जाने वाले कार्य जातीय एकता के नहीं, अपितु वंश परंपरागत एकता के प्रतीक होते हैं। जाति व्यवस्था की द्योतक जातीय पंचायत जैसी संस्था का यहां कभी विकास नहीं हुआ। व्यवहारिक एकता का नियमन किसी जातीय संगठन के द्वारा नहीं, अपितु राजनैतिक प्रशासन के द्वारा होता था।”(12)

डब्ल्यू0 क्रुक अपनी दि ट्राइव एण्ड कास्टस ऑफ नौर्थ–वेस्ट–प्रोविन्स (द्वितीय भाग,पृ0 332) में लिखते है कि ”इस प्रांत के पर्वतीय प्रदेश में दास भी है, जिन्हें वेद के दस्युओं की संतान कहा जाता है और जिनका नाग या खसों के आगमन से पूर्व उत्तर भारत पर प्रभुत्व स्थापित था। समस्त उत्तर भारत पर प्रभुत्व स्थापित करने वालें दस्यु दास कैसे हो गये, यह उसने नही बताया। डॉ0 लक्ष्मीदत्त जोशी (पृ0 12) उन्हें पर्वत–प्रदेशों के आदि निवासी बतलाते हैं, जिन्हें खसियों ने पराजित करके दास बनाया है।”(13)

जनगणना कमीशन ए.सी.टरनर ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि ”वर्तमान शिल्पकार उत्तराखंड के मूल वंशज है जो हिमालय क्षेत्र में बाद में बाहर से आने वाले विजेताओं से पहले वहां रहते थे। वे कुमाऊॅनी और गढ़वाल सभ्यता के निर्माता ओर उन दो बोलियों के अविष्कारक हैं। इनके अलावा उस समय के मेले और त्योहारों, लोक कथाओं, नाच और गाने, वाद्य–वृंद जैसे हुडक, ढोल, दमुंआ, रणसिंग, डमरू इत्यादि खेत के औजार, खाना बनाने के बर्तन, हथियार–तलवार, चाकू, कुल्हाड़ी, दराती इत्यादि उन लोगों की देन है।”(14)

"गढवाली हरिजनों में एक जाति दास कहलाती है। दस्युओं को ऋगवेद में अकर्मा, अन्यव्रता एवं आर्यो का अपमान करने वाला दास भी कहा गया है। इनका वर्ण काला था। वस्तुतः दस्यु ही नही आर्य भी कृष्णवर्ण के थे। यह दस्युओं के प्रति आर्यो का एक प्रचलित घृणा सूचक संबोधन था। डब्ल्यू0 कुक अपनी दि ट्राइव एंड कास्टस आफ मौर्य–वेस्ट–प्रोबिन्स में लिखते है कि इस प्रांत के पर्वतीय प्रदेश में दास भी है, जिन्हे वेद के दस्युओं की संतान कहा गया है और जिनका नाग या खसों के आगमन से पूर्व उत्तर भारत पर प्रभुत्व स्थापित था। समस्त उत्तर भारत पर प्रभुत्व स्थापित करने वाले दस्यु कैसे हो गये ये उन्होने नही बताया। डॉ0 लक्ष्मीदत्त जोशी उन्हे पर्वत प्रदेशों के आदि निवासी बतलाते है जिन्हे खसियो ने पराजित करके दास बना दिया।"(15)

"विभिन्न जातियों के बीच संघर्षो की छाया भूतों की कल्पना में प्रतिबिंबित हुई है। भूतों के पॉवों में आगे से मुडें हुए राजशाही जूते, तुर्क आक्रमण के प्रतीक है। भूतों की आकृति कुछ–कुछ तिब्बती लामाओं से मिलती–जुलती है। रंग और शरीर रचना में वे एकदम काले स्थानीय मूल निवासियों से मिलते–जुलते हैं। दारमा की लोक कथाओं की चुडैल निचले क्षेत्रों के लोगों की भाषा में बोलती है:

क्वातम्सया बूगे क्वर्ता

बद्या बद्या एक हाडा म ले द्ये।

(चुडैल बोली बद्या बद्या एक शाखा मुझे भी दे)

इस संवाद में पहला अंश दारमा की बोली में और चुडैल का कथन गंगोली की बोली में है।"(16)

"इनके रूप–रंग तथा शरीरकृति के विषय में टिप्पणी करते हुए कुमाऊॅ के प्रथम कमिश्नर मि0 एडवर्ड गार्डनर लिखते है– उनके गालों की अस्थियां उभरी होती है। उनका आकार नाटा व शरीर हष्ट–पुष्ट होता है। वे आकार–प्रकार से गौंड आदिम जातियों से मिलते हैं। रूप–रंग व शरीराकृति में वे अच्छे नहीं लगते तथा उच्चजाति के हिंदुओं से उन्हें तुरंत पृथक् पहचाना जाता है। निश्चित ही इस जाति का आर्य जाति के साथ कोई रक्त संबंध नहीं है।"(17)

"महत्वपूर्ण स्थानों को पौराणिक महात्मय से अलंकृत किया जाता है। कभी–कभी यह कल्पना नाम स्थान–नाम के मूल आधार से सर्वथा असंबद्ध होती हुई भी ऐतिहासिक दृष्टि से बडी सटीक लगनें लगती है। उदाहरण के लिए नैनीताल जनपद के एक स्थान मझेडा के नाम को ही लें। भाषा–शास्त्र की दृष्टि से इसका उत्स प्राकृत मज्झ या संस्कृत मध्य है। चारों ओर नदियों से घिरा हुआ यह स्थान मध्य की व्युत्पत्तिगत सार्थकता को प्रमाणित भी करता है, पर लोक में इसकी व्युत्पत्ति मण जेडि, पट जेडि. अर्थात थोडा चिपकें, पूरी तरह चिपक गये है। निरर्थक लगने वाली इस मूल निवासियों की भूमि

पर बाहर से संक्रमित होने वाली जातियों ने धीरे–धीरे अधिकार कर लिया और उन्हें गांव से निकाल बाहर किया। इस प्रकार मूल निवासियों की भूमि पर सवंमित जाति द्वारा क्रमशः अधिकार कर लेने के घटना क्रमशः अधिकार कर लेने के घटनाक्रम को व्यंजित करने वाली यह व्युत्पत्ति ऐतिहासिक दृष्टि से कहीं अधिक सार्थक है।"(18)

"रंग और रक्त की दृष्टि से शिल्पकार मूलतः कोल प्रजाति से सम्बन्धित हैं, और उन्हीं कोल प्रजाति के वर्तमान प्रतिनिधि है जिन्होंने उत्तरांचल की प्राचीन संस्कृति की नींव डाली। कालान्तर में इनमें दीर्घकालीन संसर्ग से अन्य प्रजातियों के रक्त मिश्रण हुआ। कोल प्रजाति का उदभव् मुण्डा भाषा वर्ग से हुआ जो कि निग्रीटो, भूमध्यसागरीय, और प्रोटो–आस्ट्रोलाइड प्रजाति से संबंधित है। जिनका प्रवाह विकास के क्रम में में दक्षिण अफ्रीका और दक्षिण–पश्चिम भारत होते हुए इस ओर हुआ। आज भी उत्तरांचल की नदियों, गधेरों, और गांवों के नामों में कोल प्रजाति का प्रभाव देखनें में आता है। इन्हीं कोलों पर प्रारंभ में मंगोलियन किरातों ने सत्ता स्थापित की। तत्पश्चात् क्रमशः खस, नाग, कत्यूर, चन्द, पंवार, गोरखा, और ब्रिटिश शासकों के निरन्तर शासन काल में यह वर्ग सत्ताच्यूत निम्नवर्ग के रूप में उपस्थित रहा।"(19)

उपरोक्त सभी ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि उत्तराखंड के आदि निवासी कोल–किरात नाम से प्रसिद्ध थे। जो वर्तमान शिल्पकारों के ही वंशज थे।

<u>संदर्भ ग्रंथ सूची</u>

1. सांकृत्यायन, राहुल, ऋग्वेदिक आर्य (ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन), किताब महल, इलाहाबाद, 1956, पृ0–14
2. नौटियाल, विकास, आधुनिक एवं समकालीन उत्तराखंड हिमालय, विनसर पब्लिशिंग कं0 देहरादून, 2011, पृ0– 15–16
3. सं0– प्रद्योत, चमन लाल, भट्ट, प्रवीण कुमार, कुकसाल, अरूण, उत्तराखंड के शिल्पकार, विनसर पब्लिशिंग कं0 देहरादून, 2012 पृ– 29–30
4. रतूड़ी, हरिकृष्ण, सम्पादक– कठोच, यशवंत सिंह, गढ़वाल का इतिहास, भागीरथी प्रकाशन गृह, टिहरी, 2007 पृ0–134
5. उत्तराखंड का इतिहास, बीए.एच.आई,(302), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, पृ0– 92
6. शर्मा, डी0डी0 एवं शर्मा, मनीषा, उत्तराखंड का सामाजिक एवं सांप्रदायिक इतिहास, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, 2015 पृ0–24–25
7. पाठक, शेखर, उत्तराखंड में कुली बेगार प्रथा, राधाकृष्ण पब्लिर्शस, नई दिल्ली, 1986, पृ0–07

8. पाठक, शेखर, उत्तराखंड में कुली बेगार प्रथा, राधाकृष्ण पब्लिर्शस, नई दिल्ली, 1986, पृ0–05
9. रावत, अजय, उत्तराखंड का समग्र राजनैतिक इतिहास, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, पृ0 21
10. दनोसी, बी0एल0, गढ़वाल के शिल्पकारों का इतिहास, विनसर पब्लिशिंग कं0, देहरादून, 2006, पृ0–37
11. शर्मा, डी.डी., हिमालय संस्कृति के मूलाधार, ईरा प्रकाशन, सोलन, हिमाचल प्रदेश, 1998, पृ0–79
12. शर्मा, डी0डी0 एवं शर्मा, मनीषा, उत्तराखंड का सामाजिक एवं सांप्रदायिक इतिहास, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, 2015 पृ0– 210–211
13. सिंह, भजन, आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय, भागीरथी प्रकाशन गृह, नई टिहरी, 1997, पृ0– 19
14. राम, पनी, क्रांतिदूत रायबहादुर हरिप्रसाद टम्टाः एक जीवन संघर्ष, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014,पृ0–29
15. सिंह, भजन, आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय, भागीरथी प्रकाशन गृह, नई टिहरी, 1997, पृ0–191
16. त्रिपाठी, ताराचन्द्र, .मध्य हिमालय भाषा, लोक और प्राचीन स्थान–नाम, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल, 2006 पृ0–78
17. शर्मा, डी0डी0 एवं शर्मा, मनीषा, उत्तराखंड का सामाजिक एवं सांप्रदायिक इतिहास, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, 2015 पृ0– 25
18. त्रिपाठी, ताराचन्द्र, .मध्य हिमालय भाषा, लोक और प्राचीन स्थान–नाम, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल, 2006 पृ0–118
19. संपादक– जोशी, महेश्वर प्रसाद, उत्तरांचल हिमालय के दास–शिल्पकार (अनुसूचित जाति) अतीत एवं वर्तमान, अल्मोड़ा बुक डिपो, उत्तरांचल, 2006, पृ0– 36